National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2019; 1(26): 63-66
© 2019 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ . रणजित द. पाटील,
एम. डी. (आयुर्वेद),
एम.ए. पी. एच डी. स्नातक (संस्कृत),
सहा. प्राध्यापक यशवंत आयु. कॉलेज,
कोडोली (महाराष्ट्र)

डॉ.शिवदास जाधव
निवृत्त संस्कृत विभागाध्यक्ष,
छत्रपति शिवाजी कॉलेज,
सातारा (महाराष्ट्र)

Correspondence:
डॉ . रणजित द. पाटील,
एम. डी. (आयुर्वेद),
एम.ए. पी. एच डी. स्नातक (संस्कृत),
सहा. प्राध्यापक यशवंत आयु. कॉलेज,
कोडोली (महाराष्ट्र)

भारतीय जीवन पद्धति में आयुर्वेद का महत्व

डॉ. रणजित द. पाटील

शोध सारांशिका : भारतीय जीवन पद्धति भारत देश मे प्राचीन कालसे सांप्रत काल तक यहाँ के लोगों द्वारा अपनायी, मानव जीवन के सभी अंगो-उपांगो को प्रभावित करनेवाली एक विस्तृत जीवन प्रणाली है। चतुर्विध पुरुषार्थप्राप्ति को जीवनका लक्ष्य मानते हुए, इनकी प्राप्ति के मार्ग को सुकर बनानेवाले आहार, विहार और व्यवहार के नीतिनियम इस जीवन पध्दति की नींव हैं। आयुर्वेद की उत्पत्ति हजारों वर्ष पूर्व भारतवर्ष मे चतुर्विध पुरुषार्थ प्राप्ति में बाधायें बने शारीर और मानस व्याधियोंके निराकरणार्थ हुई थी। भारतीय जीवन पध्दति में आयुर्वेद का सभी स्तरों पर अन्योन्य आश्रय एवं योगदान पाया जाता है।

मूल शब्द : भारतीय जीवन पध्दती, आयुर्वेद, आयुर्वेद के प्रमुख सिध्दांतो का प्रभाव एवं उपयोग।

प्रस्तावना

भारतीय जीवन पद्धति भारत देश मे सुदूर प्राचीन काल से सांप्रत काल तक यहाँ के लोगों द्वारा अपनायी, विकसित हुई, मानव जीवन के सभी अंगो-उपांगो को प्रभावित करनेवाली एक सर्वव्यापक प्रणाली है। परकीय आक्रमण, वैश्वीकरण, शिक्षा और संशोधन का विकास जैसे बहुविध कारणोंसे यह जीवन पद्धती अनगिनत बदलावोंकी साक्षी बनी । हम सभी भारतीयोंको यह संस्कृति पुरखोंकी देन के रूप मे मिली है। इस पद्धति और संस्कृति की गरिमा न समझने के कारण पश्चिमकी संस्कृतिका अंधानुकरण करते हुए हम शारीर, मानस और आत्मिक अस्वास्थ्य की कगार पर खडे हैं । आज विश्व के अनेक विकसित राष्ट्र भारतीय जीवन पद्धतिपर विस्तृत अन्वेषण कर रहे हैं, जिससे उन्हे एक स्वस्थ, सुखी और समृद्ध मानव समाज का निर्माण करने मे सहायता मिल सके।

आयुर्वेद का सामान्य अर्थ है, 'आयुषो वेद: आयुर्वेद:'। आयुर्वेद आयु + वेद इन दो शब्दों से बना यौगिक शब्द है । आयु की व्याख्या आचार्य चरक ने इस प्रकार की है,

शरीरेन्द्रिय: सत्वात्मसंयोगो धारि जीवितम् ।
नित्यगश्चानुबंधश्च पर्यायैरायुरुच्यते ॥ (च.सू. 1/42)

आयुर्वेदका समष्टिपरक अर्थ - आयु का ज्ञान का हो, जो आयु का ज्ञान कराये, जिसमे आयु की सत्ता हो, तथा आयु का विचार हो और जिससे आयु कि प्राप्ति हो वह आयुर्वेद है।

मूल विषय :

आयुर्वेद प्राचीन चिकित्सा शास्त्र है जिसमे वनस्पतिज, प्राणिज, और खनिज द्रव्योंके उपयोगसे औषधीयोंका निर्माण किया जाता हैं। आयुर्वेद मे औषधियोग, पथ्यापथ्य, पंचकर्म, योग, सत्वावजय आदि पद्धतियों से चिकित्सा की जाती है। 'स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणं आतुरस्य विकारप्रशमनंच । ' इस उद्देश से अवतरित हुआ आयुर्वेद आठ अंगों मे निबद्ध है, कायबालग्रहोर्ध्वांगशल्यद्रंष्टाजरावृषान्।

मानव जीवन मे स्वास्थ्य, सुख, आयु, बल आदिकी प्राप्तिहेतु इसका उगम, प्रवृत्ति और विकास हुआ है। भारतराष्ट्रका यह प्राचीनतम शास्त्र होनेसे भारतीय जीवन पद्धति आयुर्वेद शास्त्र के नींवपर खडी है । जाने-अनजाने मे हम भारतीय आयुर्वेद शास्त्र के कई सिद्धांतों और तत्वों का जीवन मे उपयोग करते आ रहे हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चतुर्विध पुरुषार्थों की प्राप्ती हेतु निरामय दीर्घायु प्रदान करना इसका परम उद्देश है । आयुर्वेद के तत्त्व भारतीय जीवन पद्धति के अभिन्न अंग हैं यह चिंतन इस शोधप्रबंध का उद्देश है।

१)स्वभावोपरमवाद :

स्वभावोपरम: स्वभावस्य स्वस्य धर्मस्य रूपस्य चोपरमो नाशो भवति। आचार्य गंगाधर (जल्पकल्पतरू)

जायन्ते हेतुवैषम्याद्विषमा देहधातवः।
हेतु साम्यात् समास्तेषाः स्वभावोपरमः सदा ॥
(च.सू. 16/27)

आहार, विहार और व्यवहार के जिन कारणोंसे प्राकृत देह धातुओंकी उत्पत्ति और पुष्टि होती है, यदि उन कारणों मे विषमता आ जाती है तो शारीरिक धातु भी विषम हो जाते हैं । मधुर रसयुक्त शक्कर, गुड, दुग्ध, इक्षुरस, चावल जैसे आहारीय द्रव्यों के सेवन से रस, मांस धातुओंकी पुष्टि होती है यदि इस रस का अत्यधिक सेवन किया जाए तो प्रमेह, स्थौल्य, हृदयविकार जैसे व्याधि उत्पन्न हो जाते हैं । शिशु के जन्म के बाद कुछ महिनोंमे दुग्धदंत निकल आते हैं । कुछ साल रहकर उनका स्वभावत:ही पतन हो जाता है और उसी स्थानपर स्वभावत:ही स्थिर दंत निकल आते हैं । स्वभावोपरमवाद से आहार, विहार और व्यवहार मे साम्यता बनाये रखने तथा मनुष्य शरीर और बाह्य जगतमें होनेवाले स्वाभाविक बदलावों के प्रति सजग रहने का संदेश मिलता है।

2) मानव अस्तित्व के त्रिदण्ड :

सत्वमात्माशरीरं च त्रयमेतत त्रिदण्डवत ।
लोकस्तिष्ठति संयोगात्तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम ॥ (च.सू.1/45)

उपरोक्त तीन तत्व मनुष्य अस्तित्व के अभिन्न अंग हैं ।

3) गर्भज भाव : शुक्रार्तव के संयोग के साथ प्रारंभ होनेवाली गर्भावस्था विश्व के मानव समाज का मूल है । आयुर्वेद मे गर्भविकास के कारणस्वरुप छह भाव बताये है।

मातृत: पितृत: आत्मत: सात्म्यत: रसत: सत्वत:
इत्येतेभ्योभावेभ्य: समुदितेभ्यो गर्भ: अभिनिर्वर्तते ॥
(च.शा. 4/2)

सुप्रजा निर्माण, गर्भिणी तथा सूतिका परिचर्या, बालक संगोपन आदि हमारी जीवन पध्दति के अहम उपक्रमों की पार्श्वभूमी आयुर्वेद से है।

4) दिनचर्या : ' दिने – दिने चर्या, दिनस्य चर्या किंवा दिनानां चर्या ' यह दिनचर्या की निरुक्ति है । प्रात: जगनेसे लेकर रात्री सोने तक के आचरण को दिनचर्या कहते है । इसमे दन्तधावन, नस्य, अंजन, स्नान आदि कर्मोंका अंतर्भाव होता है । भारत मे सालों से ये जनमानस मे प्रचलित है।

5) ऋतुचर्या : भारतीय संस्कृतिसम्मत कालगणना, वर्षगणना, ऋतुगणना आयुर्वेद शास्त्र ने चिकित्साकर्म सौकर्यार्थ स्विकार किये हैं । आयुर्वेद में छह ऋतुओंके लक्षण, ऋतुकाल में शारीरिक दोषस्थिति, पथ्यकर आहार विहार आदि वर्णन विस्तृत ये आया है। भारतीय त्योहार, उत्सव और उस समय पर किये जाने वाले व्यंजन इसी ऋतुचर्या पर निर्भर हैं ।

6) दोषचय लक्षण तथा हेतुत्याग :

मानव शरीर मे वात, पित्त और कफ ये त्रिदोष जब चय, प्रकोप, प्रसर, स्थानसंश्रय, व्यक्ति और भेद इन अवस्थाओं मे परिवर्तित हो जाते हैं तब व्याधि जनक बन जाते हैं।

चयो वृद्धिः स्वधाम्न्येव प्रद्वेषोवृद्धिहेतुषु ।
विपरीत गुणेच्छा च ..... । (अ.हृ.सू.12/22-23)

दोषों की स्वस्थान मे होनेवाली वृद्धि को चय कहते है। चयावस्थामे दोष वृद्धिकर आहार विहारादि हेतुओं के प्रति द्वेष उत्पन्न हो जाता है और विपरीत गुणोंकी इच्छा होने लगती है। जैसे वात के चय मे शीतल पदार्थोंका द्वेष और उष्णप्रीति उत्पन्न होती है। चयावस्था को पहचानकर हेतु त्याग करके अनुत्पन्न व्याधिका मूलोच्छेद करना चाहिए।

7) दोषोंके प्राकृत काल :

आयुर्वेद मे कफ, पित्त और वात इन दोषों के दिन और रात्री के क्रमेण प्रथम, द्वितीय और तृतीय प्रहर ये उदीरण काल बतायें गये हैं। इन कालों मे दोषों की स्वभावत:ही गुण और कर्माधिकता रहती है। दिन के प्रथम प्रहर में वातकाल रहने से मल मुत्र विसर्जनादि अकष्टरूपेण होते हैं। पित्ताधिक्य के दुसरे प्रहर में आहार सेवन करनेसे सम्यक पचन होता है। भारतीय जीवन पद्धतिमे आहार सेवन, निद्रा आदि इसी दोष कालपर आधारित हैं।

8) षडुपक्रम और घरेलु उपचार :

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के सभी उपक्रम जिन छह कर्मोमे वर्गीकृत किये जा सकते हैं उन्हें षडुपक्रम कहते हैं।

लंघनं बृहणं काले रुक्षणं स्नेहनं तथा।
स्वेदनं स्तंभनं चैव जानीते यः स वै भिषक्।।
(च.सू. २२/३)

'धातुसाम्य क्रियाचोक्ता तंत्रस्यास्य प्रयोजनम्' इस आयुर्वेद लक्ष्य की परिपूर्ति के लिए षडुपक्रम का प्रयोग हर व्यक्ति निजी स्तर पर कर सकता है।

क) लंघनं : यत्किंचिल्लाघवकरं देहे तल्लंघनं स्मृतम्।
(च.सू. २२/९)

लंघन प्रकार : **चतुष्प्रकारा संशुद्धिः पिपासा मारुतातपौ।**
पाचनान्युपवासश्च व्यायामश्चेति लंघनं।।
(च.सू.२२/१८)

लंघन सभी कालों मे कराया जा सकता है फिर भी शिशिर ऋतु इसका विशेष काल है । भारतीय संस्कृति मे किये जाने वाले उपवास, योगासनादि व्यायाम प्रकार, नृत्य, खेलकूद ये सब लंघनोपक्रमही हैं।

ख) बृहणं : हत्वं यच्छरीरस्य जनयेत्तच्च बृंहणम्।
(च.सू.२२/९)

बृंहणोपक्रम : **स्नानमुत्सादनं स्वप्नो मधुरा: स्नेहबस्तयः।**
शर्करा क्षीरसर्पींषि सर्वेषां विद्धिबृंहणम्॥
(च.सू.22/13)

उपरोक्त उपक्रमों मे से कुछ या सभी हम प्रतिदिन व्यवहार मे लाते हैं, जो लंघन की उपादेयता है।

ग) रुक्षण : रौक्ष्यं खरत्वं यत कुर्यात्तध्दि रुक्षणम।
(च.सू.22/10)

रुक्षणोपक्रम : **कटुतिक्तकषायानां सेवनं स्त्रीष्वसंयमः।**
खलिपिन्याक तक्रानां मध्वादीनां च रुक्षणम॥
(च.सू.22/29)

अतिस्नेहभक्षणजन्य लक्षणों को कम करने के लिये तक्र, मधु का सेवन रुक्षणोपक्रम है ।

घ) स्नेहन : **स्नेहनं स्नेह विष्यंद मार्दवं क्लेदकारकं।**
(च.सू.22/11)

स्नेहद्रव्य तथा कार्मुकता :

सर्पिस्तैलं वसा मज्जा स्नेहोदिष्टश्चतुर्विधः।
पानाभ्यंजन बस्त्यर्थं नस्यार्थंचैव योगतः॥
स्नेहना जीवना वर्ण्या बलोपचयवर्धनाः।
स्नेहना ह्येते च विहिताः वातपित्तकफापहा॥
(च. सू. 1/87-88)

रुक्षता, वातविकार, व्यायाम जैसी अवस्था मे स्नेहयुक्त खाद्यपदार्थ, दुग्ध, मांसरस, अभ्यंगादि उपचार स्नेहन कर्म हैं ।

ड) स्वेदन : गात्रादितो जलादेः निःस्यन्दने। गात्रादितो घर्मादेः निस्सारणव्यापारे।

स्वेदन साग्नि (अग्नि के साक्षात उपयोग से) और निराग्नि दो प्रकार का होता है ।

व्यायामः उष्णसदनं गुरुप्रावरणं क्षुधा।
बहुपानं भयक्रोधावुपनाहाहवातपाः॥
स्वेदयन्ति दशैतानि नरमग्निगुणादृते।
(च. सू. 14/64)

च) स्तम्भन : स्तम्भनं स्तम्भयति यदगतिमंतं चलं ध्रुवं।
(च.सू.22/12)

स्तम्भन द्रव्य गुण :

शीतं मंदं मृदु श्लक्ष्णं रुक्षं सूक्ष्मं द्रवं स्थिरम ।
यद द्रव्यं लघु चोद्दिष्टं प्रायस्तत स्तम्भनं स्मृतम ॥
(च.सू.22/17)

अतीसार, स्वेदातियोग, रक्तस्राव जैसे व्याधियोंमे जिस औषधी और उपक्रमोंका हम प्रयोग करते हैं वे सब स्तम्भन ही है।

9) हिताहितकारक आहार – विहार : आयुर्वेद मे आहारीय द्रव्यों की कार्मुकता के आधार पर उनके तीन भेद बताये हैं।

किंचित किंचिद्दोषप्रशमनं किंचिध्दातुप्रदूषणम।
स्वस्थ स्वस्थवृत्तौ मतं किंचित्त्रिविधं द्रव्यमुच्यते॥
(च.सू. 1/67)

स्वस्थ दीर्घायु के लिये स्वस्थकर आहार विहार का सेवन करना चाहिए । आयुर्वेद मे स्वभावःत हितकारक नित्य सेवनीय द्रव्य तथा नित्य सेवन करने पर अहितकारक होने वाले द्रव्यों की सूची बतायी है । भारतीय जीवन पध्दति में यह विचार सालों से लोकप्रचलित है।

10) वैरोधिक आहारवाद : स्वस्थ और सुखी जीवन के लिए हितकारक आहार आवश्यक है।

हिताहारोपयोगः एक एव पुरुषवृद्धिकरो भवति,
अहिताहारोपयोगः पुनर्व्याधिनिमित्तमिति । (च.सू. 25/30)

विरुद्धाहार प्रकार :

यद्यापि देशकालाग्निमात्रासात्म्यानिलादिभि :।
संस्कारतो वीर्यतश्च कोष्ठावस्थाक्रमैरपि ॥
परिहारोपचाराभ्यां पाकात् संयोगतः अपिच।
विरुध्दं तच्च न हितं हृत्सपव्दिधिभिश्च यत ॥
(च. सू. 26/86-87)

उपरोक्त वैरोधिक आहार प्रकारों को भली भाँति समझकर उसका सर्वथा त्याग करना चाहिए ।

11) अन्नपानविधिः अन्नपानविधि का विस्तृत विवेचन यह आयुर्वेद की भारतीय जीवन पध्दति को सबसे बडी देन है।

प्राणाः प्राणभृतामन्नमन्नं लोकाः अभिधावति ।
वर्णः प्रसादः सौस्वर्यं जीवितं प्रतिभा सुखम ॥
तुष्टिः पुष्टिर्बलं मेधा सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम ।
(च.सू. 27/49-50)

परब्रह्मस्वरुप आहार द्रव्यों को चरकाचार्यने बारह वर्गो में विभाजित किया है जिनका हम हररोज उपयोग करते हैं।

शूकधान्य शमीधान्य मांसशाकफलाश्रयान ।
वर्गान हरितमद्याम्बु गोरसेक्षुविकारिकान ॥
दश व्दौ चापरौ वर्गौ कृतान्नाहारयोगिनाम ।
(च.सू. 27/6-7)

शुद्ध आहार का सेवन करते समय जो भाव सम्यक होना जरुरी हैं उन्हे अष्टाहारविधिविशेषायतनानि कहते हैं।

खल्विमान्यष्टावाहारविधिविशेषायतनानि भवन्ति, तद्यथा प्रकृतिकरणसंयोगराशिदेशकालोपयोगसंस्थोपयोक्त्रष्टमानि।
(च.वि.1/4)

आहारविधिविधान : उष्णं, स्निग्धं, मात्रावत, जीर्णे, वीर्याविरुध्दम, इष्टदेशे, इष्टसर्वोपकरणं, नातिद्रुतं, नातिविलम्बितम, अजल्पन, अहसन, तन्मना भुंजीत, आत्मानमभिसमीक्ष्य सम्यक । (च.सू. 1/24)

स्वस्थ और रोगी दोनों के लिए यह विधान लाभदायक है। आहारमात्रा का प्रमाण बताने वाला त्रिविधकुक्षीय सिध्दांत सर्वथा अनुकरणीय है ।

त्रिविधं कुक्षौ स्थापयेदवकाशांशमाहारस्याहारमुपयुंजानः,तद्यथा एकमवकाशांशं मूर्तानामाहारविकाराणां, एकं द्रवानाम, एकं पुनर्वातपित्तश्लेष्माणाम, एतावतीं ह्याहारमात्रामुपयुंजानो नामात्राहारजं किंचिदशुभं प्राप्नोति । (च. वि. 2/3)

12) धातुपोषण वाद : **शरीरधारणाध्दातव इत्युच्चनो।**
(सु.सू.14/20)

रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सप्तधातु देहधारण करते हैं । इनके पोषण संबंधी तीन न्याय सर्वमान्य हैं ,

क्षीरदधि न्याय, केदार कुल्ल्या न्याय, खलेकपोत न्याय । धातु के उत्तम पुष्टी से ही उसके उपधातु की भी पुष्टि होती है । भारत के विभिन्न राज्यों मे पायी जाने वाली विविधतापूर्ण और पोषणमूल्य से युक्त विविध आहारकल्पना धातुपोषण का उद्देश सफल कराती हैं ।

13) गुरु – शिष्य परंपरा : प्राचीन काल से आयुर्वेद का प्रसार गुरुकुलों मे मौखिक रुप से ही होता रहा है । गुरुमुख से सुनकर श्लोकों को कण्ठ्य करना पडता था । शिष्य और गुरु दोनों के आदर्श चरित्र का आग्रह आचार्यों ने किया है । बहुत सारी जगहों पर यह पध्दति आज भी मौजूद है ।

14) दशप्राणायतनानि : मनुष्य शरीर के दशांग जहाँ पर वायु अथवा प्राण का अधिष्ठान रहता है, उन्हे प्राणायतनानि कहा है ।

दशैवायतनान्याहुः प्राणायेषु प्रतिष्ठिताः ।
शंखौ मर्मत्रयं कंठो रक्तं शुक्रौजसी गुदम॥

(च.सू.29/3)

व्यायाम, लडाई, शस्त्रकर्म, अग्निकर्म, क्षारकर्म आदि क्रिया करते समय प्राणायतनों का संरक्षण करना चाहिए । स्वंयरक्षाविधि में यह अंतर्भूत है ।

15) कालाकाल मृत्यु तथा अरिष्टलक्षण : आयुर्वेद में जरा और मृत्यु को स्वभावबलप्रवृत्तरोग कहा है । काल मृत्यु शारीरिक धातुओं तथा क्रियाओं के क्षय के कारण होती है । अकाल मृत्यु अपने बल या शक्ति से अधिकसाहसजन्य कार्य, विषम भोजन, विषम व्यायाम, अतिमैथुन, दुर्जनसंग, वेगविधारण और भूत विष वाय्वादि आगंतुज कारणोंसे आती है । काल और अकाल दोनो ही मृत्यु में पूर्वारिष्ट लक्षण अवश्यमेव उत्पन्न होते हैं । जीवन और मृत्यु वास्तव में परमात्मा के हातों में होते हुए भी विवेकपूर्ण आचरण करते हुए अकाल मृत्यु से बचने की पुरी कोशिश करनी चाहिए ।

16) दैवपुरुषकार वाद : आयुर्वेद आत्मा और परमात्मा की अवधारणा का अनुसरण करने वाला आस्तिक शास्त्र है । ' कर्म यत पौर्वदैहिकं ' अर्थात पूर्वजन्म या काल में किए गए कर्मों के अनुसार प्राप्ता होने वाला फल दैव है । इस जन्म में जो कर्म किए जाते हैं उसे पुरुषकार कहते है । दैव और पुरुषकार दोनो के उत्तम होने से सुखदायक दीर्घायु प्राप्त होता है । दुर्बल भाग्य को बलवान पुरुषार्थ नष्ट कर देता है तथा दुर्बल पुरुषकार को बलवान भाग्य नष्ट कर देता है । मनुष्य को इन दोनोंका समन्वय करके सुखपूर्वक अपना जीवन यापन करना चाहिए।

17) प्रमाण विचार : प्रमीयते अनेन इति प्रमाणम।

यथार्थानुभवः प्रमा, तत्साधनंच प्रमाणम।

(उदयनाचार्य)

पंचज्ञानेंद्रिये तथा उभयात्मक मनस के द्वारा ज्ञानग्रहण करने के लिए अत्यावश्यक साधनों को प्रमाण कहा जाता है । आयुर्वेद ने प्रत्यक्ष, अनुमान, आप्त, युक्ति, ऐतिह्य आदि प्रमाणों का स्विकार किया है । ये प्रमाण भारतीय दर्शनशास्त्र के प्रधान अंग हैं ।

18) जनपदोद्ध्वंस : जब एक ही प्रकार की व्याधि से सम्पूर्ण जनपद की विनाश प्रक्रिया प्रारम्भ होती है तो इस विनाश – प्रक्रिया को जनपदोद्ध्वंस कहा जाता है ।

बहुजनसाधारणं वातजलदेशकालरुपं साधारणरोगकारणमभिधातुं जनपदोद्ध्वंसनीयः अभिधीयते। (चक्रपाणि)

साम्प्रत काल में हवा, जल, ध्वनि आदि के प्रदूषण से अनेकों सांसर्गिक व्याधि फैलते हैं । आयुर्वेदने इन कारणों का मूल कारण अधर्म बताया है । यह अधर्म यहाँ रहनेवाले जनपद प्रधान जिसे आज की भाषा में एम.एल.ए. या मंत्रि कह सकते है, उनके और लोगों के अनुचित आचरण से बढता है । यहाँ राजनीतिज्ञों के स्वच्छ और आदर्श आचरण का महत्व प्रतिपादित किया है ।

19) प्रज्ञापराध : मनुष्य से होने वाले सर्वाधिक अपराध आत्मसंयम के अभाव के कारण ही होते है । इस आत्मसंयम के अभाव को आयुर्वेद ने प्रज्ञापराध यह संज्ञा देकर इसे दुःखदायक व्याधि का मूल कारण माना है ।

धीधृतिस्मृतिविभ्रष्टः कर्म यत कुरुते अशुभम ।
प्रज्ञापराधं तं विद्द्यात सर्वदोषप्रकोपणम ॥

(च. शा. 1/102)

यह प्रज्ञापराध सर्वथा त्यागकर हमेशा विवेकमार्ग का अनुसरन करना चाहिए, यह आयुर्वेद का संदेश है ।

आत्मानमेव मन्येत कर्तारं सुखदुःखयो :।
तस्माच्छ्रेयस्करं मार्गं प्रतिपद्द्येत नोत्रसेत॥

(च.नि.7/22)

20) आचार रसायन : उत्तम आचरण से रसायन औषधी का सेवन किये बिना ही रसायनसेवनजन्य लाभ मिलते हैं , जो सर्वानुकरणीय हैं , उसे आयुर्वेद आचार्यों ने आचाररसायन कहा है।

सत्यवादिनमक्रोधं निवृत्तं मद्यमैथुनात ।
अहिंसकमनायासं प्रशांतं प्रियवादिनम ॥
जपशौचपरं धीरं दाननित्यं तपस्विनम ।
देवगोब्राह्मणाचार्यगुरुवृध्दार्चने रतम ॥

(च.चि.1/1/4/30-31)

उपसंहार: भारतीय जीवन पध्दति सदियों पुरानी एक संपन्न और समृध्द जीवन प्रणाली है । आयुर्वेद केवल चिकित्सा शास्त्र ही नही अपितु अध्यात्म, समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र जैसे मानव जीवनोपयोगी कई उदात्त तत्वों को प्रकाशित करने वाला एक सर्वमान्य एवं सार्वभौमिक शास्त्र है । आयुर्वेद भारतीय जीवन पध्दति का केवल एक उपांग ही नही अपितु आत्मा है ।

संदर्भग्रंथ सूची :

1.चरक संहिता, चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी
2.सुश्रुत संहिता , चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी
3.आयुर्वेद के मूल सिद्धांत एवम् उनकी उपादेयता, डॉ लक्ष्मीधर द्विवेदी, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी